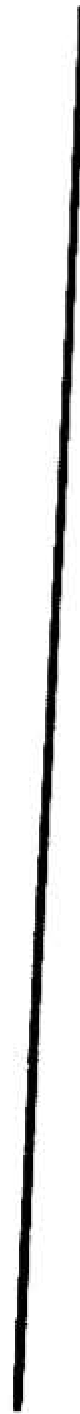
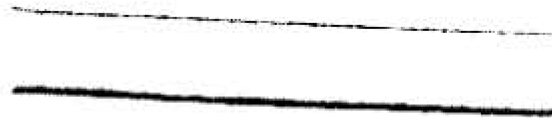

SRI PRATAP COLLEGE

अमृत लेखा

सुधीन्द्र एम० ए०





आमुख

प्रलय वीणा के तारों को जिस गायक ने छेड़ा है अमृतलेखा भी उसके स्वरों का संगीत है। यह संगीत कैसा है, यह बताना उसका काम नहीं।

अमृतलेखा को स्नेह का संबल प्राप्त होगा, ऐसी आशा है।

बालिका विद्यालय,
वनस्थली
रामनवमी
२००१ विक्रमाब्द

—सुधीन्द्र



भैरवी के कवि

को

भूमिका

अमृत-गीत लिखे न क्योंकर आज मेरी अमृतलेखा ?

व्योम के ग्रह-तारकों में
जो चरण के चिह्न छोड़े—
रोक लेंगे क्या उसे ये
एक युग के निमिष थोड़े !

आग हो, हिम हो, प्रलय हो,
मेह, आँधी या मलय हो,
कौन मेरी लेखनी का
अमर अक्षर-तार तोड़े !

सृष्टि के सर्जन-प्रलय में खींच पाया कौन रेखा ?
अमृत-गीत लिखे न क्योंकर आज मेरी अमृतलेखा ?

रँग दिये मैंने धरा के
अंग ले-ले रंग बाँके,
मोहने जिसको प्रकृति की
सुन्दरी के नेत्र झाँके,

घन, गगन, नंदन, विपिन, वन
कुंज, गिरि, सरि, तरु, लता, तृण,
देख जिनको शून्य में हैं
इन्द्रधनु ने चित्र आँके !

क्यों न देखे वह सृजन जिसने प्रलय का खेल देखा ?
अमृत-गीत लिखे न क्योंकर आज मेरी अमृतलेखा ?

अमृतलेखा



१

अमर जीवन को मिटा देंगे नहीं शत शत मरण ये !

कुञ्ज छायामय बने हैं
जबकि पग-पग पर मनोरम,
लग नहीं सकता निमिष भर
यह विषम पथ दीर्घ-दुर्गम,

पथ चिरन्तन को छिपा देंगे नहीं लघु-लघु चरण ये !

शूल पर चल फूल की सुधि
छा गई बन तीव्र मन में !
खिल उठी मधुऋतु सुरभि-पद
चूम तन के विरस वन में !

अमृत-सागर सोख पायेंगे नहीं कुछ गरल कण ये !

मिलन-सुख की मधुरिमा से
भर गये हैं विकल सपने,
धो लिये मधु से स्मरण ने
विष-व्यथा के चिह्न अपने,

मिलन के युग-युग भुला देंगे नहीं कुछ विरह क्षण ये !



२

अमर जो न मुझे करे वह दान लेकर क्या करूँगा ?

इस सघन संगीत-वन में
एक बस पाथेय था स्वर,
खो गया किस मग भटककर
राग जो था एक सहचर ;

गेय दो तो दो मुझे मैं गान लेकर क्या करूँगा ?

सुखद सपनों में पला हूँ
आज ये छीनो न अपने,
मैं विसुधि में खो चुका हूँ
भाव, चिंतन, मनन अपने,

ध्येय दो तो दो मुझे मैं ध्यान लेकर क्या करूँगा ?

अक्ष पर अपने निरन्तर
घूमता मैं चक्र बनकर,
लक्ष्य अपना पा सकेगा
प्राण क्या निज लक्ष खोकर ?

प्रेय दो तो दो मुझे मैं प्राण लेकर क्या करूँगा ?

३

अमर प्राणों की अचिरता
दी मुझे उपहार में क्यों?

स्वर्ग में था सुखद नन्दन
मर्त्य-पथ में गहन कानन;

स्वप्न-सा सन्देश दे
भेजा मुझे संसार में क्यों?

कूल था यदि मूल सुख का,
यह भँवर जञ्जाल दुख का,

तज दिया दे साँस की
पतवार जीवन-धार में क्यों?

मुक्ति थी इतनी मनोरम,
और परवशता मरण-सम!

कर लिया बन्दी चिरन्तन
घेर मुझको प्यार में क्यों?

४

इन चरणों की धूल मिले !

तो फिर जीवन में पग पग पर
चाहे दारुण शूल मिले !

जग का फूल-फूल भी मग में
कंटक बन चुभता है पग में,
जग के अमृत का प्याला भी
फैलाता है विष रग-रग में ;

जग की क्षमा मिले न, तुम्हारी
ममता बनकर भूल मिले !

इन चरणों की धूल मिले !

तुम यदि विमुख रहो सुख भी दुख
सम्मुख रहो स्वयं दुख भी सुख,
वैर-विरोध अनीति अकरुणा
तुमको छू होंगे प्रेमोन्मुख ;

हिंसक भी तो साथ तुम्हारे
बनकर चिरअनुकूल मिले।

इन चरणों की धूल मिले।

नहीं चाहिए सुख या वैभव
तन मन में न सुखों का उत्सव ,
एक तुम्हारी प्रेम-किरण पा
स्वर्ग बनेगा यह रौरव - भव ।

मंगलमय न मिले जीवन में
पर मंगल का मूल मिले ।

इन चरणों की धूल मिले ।



५

एक दिन लोगे शरण में !

सिन्धु का मन-घन उमड़ता
जब प्रिया-प्रति प्रणय-क्षण में ,
रसवती स्रोतस्वती छिपती
स्वयम् जा सिंधु-तन में ;

वरण यह तन को मिले ,
तन यह समर्पित हो वरण में !

मृत्तिका के गर्भ से उत्पन्न हो
फल फूल कोमल
खिल सुरभि बिखरा विपिन में ,
मुँद गया रज में अचंचल !

चरण ये मन में मुँदे ,
मन यह खिले बिखरे चरण में !

तम मिटाने का जला
लौ माँग कर जब क्षुद्र दीपक ,
स्नेह कर सब दान अपना
तिमिर में ही सो गया थक !

मरण में जीवन जगे ,
जीवन बुझे जल-जल मरण में !

६

कौन-सा यह देश ?

लग रहा परिचित यहाँ घर-द्वार ,
श्रम मिटाता मुग्ध जय-जयकार ;

मिली स्वागत में मुझे क्यों बँधी बन्दनवार ,
देखते थे पन्थ मेरा क्या नयन अनिमेष ?

स्निग्ध चन्दन-रेणु-सी यह धूल !
सुधि दिलाता-सा नदी का कूल !

लग रहे मेरे खिलाये-से यहाँ के फूल ।
सज रहा क्यों वेश चिर पहचान का परदेश ?

पुतलियों में बोलता-सा हास ,
स्पर्श में है क्यों अनन्त मिठास ?

बात में रस, रास मन में, प्यार-सा है श्वास ,
सुन रहा हूँ—'अब न चलना रह गया है शेष' ,

अधर पर आता नहीं है बोल ,
दृष्टि कुछ सुधि में रही मधु घोल ,

सम्पदा-सी मिली जीवन में मुझे अनमोल !
बन गये सन्देशवाही प्राण ही सन्देश !

७

क्या करूँ मैं चाह उस क्षण की ?
मर्त्य मुझको जब मिलेगी शरण अमरण की !

श्वास दो बजती रहेगी वेणु मेरी ,
स्पर्श दो सजती रहेगी रेणु मेरी ,
दो प्रबल आघात पग का ,
गा हरे अवसाद मग का ,

किन्तु यदि छाया न दोगे निज चरण की ,
जा छिपेगी चरण में झंकार जीवन की !

झलक दो सुरभित बनेंगे चित्र मेरे ,
रूप दो तो बनें ध्यान पवित्र मेरे !
प्रेम का दो एक प्रिय मधु-क्षण
हो उठें उद्‌गार मधु-कण !

किन्तु पूछोगे न पल यदि बात मन की ।
हृदय लोभी बाँध मर्म-पुकार क्रन्दन की !

स्मरण दो तो हार भी आनन्द होगी ,
मधुर चितवन ही मिलन का छन्द होगी !
बाहु यदि अपने बढ़ाओ ,
ये चिरन्तन दुख मिटाओ ;

किन्तु यदि आशीश-वाणी दो मरण की ,
मुक्ति पा लेगी मुझी में मुक्ति बन्धन की !

८

क्या दूँ मैं उपहार में ?

किसको अपना गिनूँ आज मैं यात्रामय संसार में ?

यह साँसों का कोमल बन्धन,
तोड़ सकेगा कब यह तन-मन ?

लगी हुई यह आत्मा की निधि जीवन के व्यापार में !

मेरे शतदल की पंखड़ियाँ,
क्यों झकझोर रही ये घड़ियाँ ?

बहता रहे सतत जीवन की अमर चिरन्तन धार में !

यह कोलाहल कर न सके क्षय,
मेरे तारों की मधुमय लय ;

हो जाये नीरव न मरण के गर्जनमय हुंकार में !

मैं संघर्ष-निरत हूँ निर्बल,
स्मरण तुम्हारा है बस सम्बल,

विजय मिलेगी इन प्राणों को इस शरीर की हार में !

९

क्या नहीं मैं पास ही हूँ ?

तुम रहो नेपथ्य में पर, मैं तुम्हारा रास ही हूँ !

सुन रहा संसार प्रतिपल
मुग्ध मेरा गान मधुमय,
हो रहा सुन सुन उसी में
वह तुम्हारी तान तन्मय,

कर रहा मुखरित लयों में, मैं तुम्हारी श्वास ही हूँ !

खोजता मैं, तुम छिपे हो,
क्या इसी का नाम जीवन ?
जग मरण कह दे न उसको
मैं छिपूँगा किंतु, जिस क्षण,

गा रहा इस लय-प्रलय में, मैं तुम्हारा लास ही हूँ।

क्षणिक दुख, सुख तोल लेंगे
क्या मिलन की निधि अपरिमित ?
स्वप्न, निद्रा, जागरण में
हो रही जो नित्य वितरित ;

इस विरह में भी सतत मैं, मिलन का अधिवास ही हूँ !

१०

क्या यही मंदिर तुम्हारा ?

साँस के आघात पा
गिर-गिर सदा जाता बिचारा।

क्या यही है आरती
लौ-ज्योति जिसकी मंद-सी है ?
क्या यही है अगुरु
जिसकी सुरभि यों निस्पन्द सी है ?

फूल जो निर्माल्य बनते
मुरझ पल भर में बिखरते ;
उत्सवों में भी तुम्हारी
यह विपंची बन्द-सी है।

पाद्य-कलशों में भरा
पीयूष कब ? है नीर खारा !

क्या यही मंदिर तुम्हारा ?

क्या यही प्राचीर है,
जो मृत्तिकामय क्षीण निर्बल ?
और वज्र-कपाट हैं पर
मोम-से जाते पिघल गल !





शीश-कलश मलीन-लुंठित
कांति जिसकी दीन-कुंठित ;
रंध्र शत-शत हैं बने
जो व्याल के बिल-से अमंगल !

मूर्ति है कैसी सधी
जो डोरियों का पा सहारा !

क्या यही मंदिर तुम्हारा ?

११

क्या विजय मेरी मिलेगी हार में ?

उदधि के उर से उठी जो
घनघटा ऊँची उमड़ती,
विरस धरती को तपाती
शून्य अम्बर में घुमड़ती !

गिर पड़ी शीतल परस पा,
सुखद सजल फुहार में !

क्या विजय मेरी मिलेगी हार में ?

बढ़ चला घूर्णित बवण्डर
भ्रान्त-क्रान्त दसों दिशा में,
धूल से धूमिल दिवस को
लीन कर भीषण निशा में !

लय हुआ वह एक पल में,
मृदुल मलय बयार में !

क्या विजय मेरी मिलेगी हार में ?

चल पड़ा निर्झर गरजता
गिरि-शिखर से गर्व में भर,



प्यार पाते ही धरा का
हो गई गति मंद-मन्थर ;

हो गया वह मौन मिल
निश्चल नदी की धार में !

क्या विजय मेरी मिलेगी हार में ?

प्राण जो कण्टक कुचल
गल आग में विष से सँभलता ,
था निरन्तर प्रगति-पथ पर
आँकता अपनी सफलता ;

रुक गया किस अङ्क में बस ,
एक पल के प्यार में ?

क्या विजय मेरी मिलेगी हार में ?

१२

क्यों चूमता अमर है
इन मृत्तिका-कणों को ?
क्यों चाहता अजर है
इन नाश के क्षणों को ?

मुसकान एक जिसकी
इस सृष्टि का उदय है,
भ्रूभंग एक जिसका
इस सृष्टि का प्रलय है ;

निस्सीम मानता है
क्यों वज्र बन्धनों को ?
क्यों चूमता अमर है
इन मृत्तिका-कणों को ?

इस मृत्तिका-कलश में
पीयूष पेय भर-भर,
निशिदिन उँडेलता है
क्यों मृत्यु के चरण पर ?

क्यों साध्य साधता है
इन हीन साधनों को ?
क्यों चूमता अमर है
इन मृत्तिका-कणों को ?



क्यों जन्म में मरण में
सुख-दुख टटोलता है!
क्या प्रेम में प्रणय में
निज भेद खोलता है!

क्यों प्रेय-श्रेय बनता
वह आप जीवनों को!
क्यों चूमता अमर है
इन मृत्तिका-कणों को!

१३

घुल रही नींद आँखों में !
आई थकान पाँखों में !

यह हंस उड़ चला प्रिय का
मधु मिलन लिये प्राणों में,
जो फूट पड़ा पंखों की
गति के लयमय गानों में,

क्या हुआ रुक रहा पल भर
यदि गीत भरे लाखों में।

जो भूल गया निज गति में
अपनी ही प्यास-क्षुधा को,
कर पार प्रलय के सागर
पीता वह प्रेम-सुधा को;

वह रह न सकेगा पथ पर
छाये तरु की शाखों में।

घुल रही नींद आँखों में,
आई थकान पाँखों में।



१४

चित्र तुम जिस सत्य के हो मैं उसी की हूँ कहानी !

मैं तुम्हारी कामना की
भावना की एक भाषा,
मैं तुम्हारी चाह की
उत्साह की हूँ एक आशा;

पा गये मुझमें तुम्हारे रंग वे स्वरहीन वाणी;
चित्र तुम जिस सत्य के हो मैं उसी की हूँ कहानी।

चित्र ही सब जान पाते
तो कही जाती कथा क्यों ?
नयन से जलधार बन-बन
वह निकलती फिर व्यथा क्यों ?

तुम स्वयम् कुछ खोजते थे मैं उसी की तो निशानी,
चित्र तुम जिस सत्य के हो मैं उसी की हूँ कहानी !

प्राण ! मुझको सुन-समझ
तुमको कभी पहचान लेंगे,
तूलिका की और वाणी
के हृदय की जान लेंगे;

ये तुम्हारे अंग मेरा संग पाकर आज प्राणी !
चित्र तुम जिस सत्य के हो मैं उसी की हूँ कहानी।

१५

चिर सखा तुम प्राण के हो,
पर, अपरिचित भी।

साँस का यह सूत्र लेकर
मैं चला आया अगम मग,
पार कर कितने अपरिचित
नद, नदी, उपवन, विपिन, नग!

देख-सुन छवि-गान भूला
ध्येय का ही ध्यान भूला,
स्वप्न में पर मैं तुम्हें
पाता रहा दिन-रात सो-जग,

हूँ इसी से तो थकित भी
और अथकित भी।
चिर सखा तुम प्राण के हो
पर, अपरिचित भी!

दूर होकर भी निकट तुम,
निकट होकर भी अलक्षित!
प्राण के भीतर समाकर
भी न स्पर्शित तुम अपरिमित!



बूँद-बूँद सदैव बीता
किंतु जीवन यह न रीता,
प्राण, कब अनजान में
भरते रहे पीयूष नित-नित ?

खेल है यह तो चिरन्तन,
किन्तु अविदित भी !
चिर सखा तुम प्राण के हो
पर, अपरिचित भी !

आ रहे मुँह नित्य अगणित
प्राण मेरे नयन-पथ में ;
किंतु तुम उनमें कहाँ
खोया जिसे था पंथ-अथ में ?

क्यों न मैं पहचान पाता
है कि जिससे सत्य नाता,
तुम न गिनना हार अपनी
पा मुझे निज विजय-रथ में ;

तुम रहे विस्मृत मुझे प्रिय,
किन्तु वंदित भी !
चिर सखा तुम प्राण के हो
पर, अपरिचित भी !

१६

छू लूँ तुमको पुण्य चरण।
भूलूँ अपने जन्म-मरण।

बहती आई है यह सरिता,
हुई विविध जीवन से भरिता;

बहना पड़े न जाने कब तक
बिना तुम्हारी लिये शरण!

तुम अपने अंतर का यह रस,
मुझे न पहुँचाओ यों बरबस;

मेरी यह चंचल धारा तो
कर न सकेगी उसे भरण।

जहाँ न हो क्षय का कुछ भी भय,
निज में लय कर लो लीलामय!

मेरे सीमामय लघु तन को
करने दो निस्सीम वरण।



१७

जीवन के इस सूने पथ में।

एक साँस का सम्बल देकर
छोड़ दिया एकाकी अथ में!

सुख-सपनों की सुधि छिटकातीं
आतीं ये तारकमय रातें,
मैं हूँ लिये घटा प्राणों में
अपनी पलकों में बरसातें;

सुधि की बिजली तड़प-तड़प कर
लौ-सी एक लगा जाती है,
इंद्रधनुष-सी फूल उठी क्यों
मन में आज मिलन की बातें?

युग-युग दुखद विराम बने हैं
विषम विरह की कथा अकथ में।

जीवन के इस सूने पथ में।

जिस मरुथल में छाँह नहीं है,
पथ में वहाँ विराम कहाँ है?
सरिता का सागर से पहले
और कहीं विश्राम कहाँ है?

यह पथ भूला पथिक अतिथि बन
आज यहाँ कुछ पल ठहरा है,
परदेसी को एक पराया
ग्राम भला निज धाम कहाँ है ?

पुर-तोरण से निकल पड़े तुम
अपने दिव्य प्रलय के रथ में !

जीवन के इस सूने पथ में !



१८

तुम क्यों जगे प्राण ?
पहुँचा कहाँ ध्यान ?

उठा रक्त में स्पंद,
था कब चरणचाप ?
हुई एक धड़कन,
न था मौन संलाप !

हुई मुग्ध पुतली
नहीं वह गया झाँक,
हुआ चित्त चंचल
गया चित्र कब आँक ?

अभी सो रहो—है
कहाँ स्वप्न - अवसान !
तुम क्यों जगे प्राण ?

रहा काम ही काम,
अबलौं न विश्राम !
तुम्हें पंथ ही प्रेय !
है श्रेय पर धाम !

किसी की मधुर याद,
किसका मधुर छोह?
अभी रह गया क्या
तुम्हें बंध से मोह?

मिटे क्यों भला
आगमन और प्रस्थान?
तुम क्यों जगे प्राण?



१६

तुम मुझे स्वप्न में मिलो।

दिवस हैं बने कराल क्रूर कठिन कारागार,
पल पल है तप्त प्रखर प्रज्वलित अंगार;

रात के बिछे विशाल अंबर में
पुष्प-भार से झिलो।
तुम मुझे स्वप्न में मिलो।

स्नेह-सरस अंतर बने न वर्तिकाविहीन,
पाल सके ज्योतिकिरण प्राण दीन-हीन-क्षीण;

ज्योति पिंड स्थिर न जलो
जगी दीपशिखा से हिलो।
तुम मुझे स्वप्न में मिलो।

अंक अंतराल में चरण करो स्पर्श प्राण!
जीवन की लहर-लहर बने बिम्बमान;

पंकलीन मानस में तुम
पुनीत पद्म से खिलो।
तुम मुझे स्वप्न में मिलो।

२०

तुम मेरा संसार न देखो !

तुम्हें छिपाया है मैंने रच कामों
के शत-शत अवगुंठन ,
तुम्हें मोहने की क्रीड़ा ही
हुई साँस सी मुझको बन्धन ;

प्राण अमर देखो मेरे ,
यह नश्वर कारागार न देखो !

आँक रहे मेरे तारक ये
नव-नव छवियों की छाया को ।
प्राणों की परिचित रेखाएँ
अगम रहीं मेरी काया को ।

भाव - चित्र देखो मन के ये
पुतली के आकार न देखो ।

दुख विष पीते समय सुरा पर
पीने पर बन रहा अमृत सम ,
क्षणिक तुम्हारे अधर छुए
इन अधरों का पा स्पर्श मनोरम ;



गरल-पान देखो पल-पल पर ,
भय-प्रेरित चीत्कार न देखो ।

प्राणों से कह रहा तुम्हारी
कथा कौन सन्देशवाह बन ?
उससे दूर दूर रह कर ,
वंचित करता हूँ जीवन-धन !

देखो उर का वरण मरण पर
क्षण-क्षण चरण-प्रहार न देखो ।

विरह-मिलन दुखसुख मय क्रम हैं
जन्म मरण इस प्रिय क्रीड़ा का ,
है मधुमय में मिलन जगत-
जीवन की कटु कर्कश पीड़ा का ,

देखो अगणित मरण-विजय ,
जीवन की अविरत हार न देखो !

२२

तुम मेरे मन्दिर की प्रतिमा !

जिसकी सुषमा इस तन-मन में
पल-पल अविकल झलक रही है,
जिसकी ममता इन नयनों से
रोम-रोम से छलक रही है ;

जिसने मेरे लघु प्राणों को
की है दान अमृत की महिमा

तुम मेरे मंदिर की प्रतिमा !

जिसकी मधु सुधि के चुंबन से
मेरे स्वर बन गीत निखरते,
जिसका सरस परस पा मेरे
मन-निकुंज में सुमन बिखरते ;

मेरी कृति-कृति में गल ढलती
जिसकी मंजुल-मृदुल मधुरिमा।

तुम मेरे मंदिर की प्रतिमा !



२३

तुम विजय बन पास हो प्रिय !
तो मुझे फिर हार क्या है ?

तुम चलो यदि साथ रथ में
हो अनल का कुंड उपवन,
हम चलें अंगार-पथ में
खिल उठेंगे फूल वन-वन ;

लपट मलयानिल बनेगी,
स्वप्न सी मंज़िल खिलेगी ;
मैं गरल भी पी सकूँगा,
पा तुम्हारी स्निग्ध चितवन ।

दो झलक मुस्कान की प्रिय
तो स्वयं असिधार क्या है ?

स्रोत ममता का तुम्हारा
यह नरक की ज्वाल लीले,
एक मीठा बोल सौ
तूफ़ान की हुंकार पी ले ;

एक भ्रू भूकंप रोके
एक इंगित प्रलय टोके,
एक चुंबन सोख कितने
रक्त रंजित युद्ध भी ले;

प्रेम आलिंगन मिले तो
घोर मृत्यु-प्रहार क्या है?

२४

तुम सिखा रहे हो बार-बार
मैं इस मिट्टी से करूँ प्यार।

तुमने जिस रसका किया दान
उसमें घुल-मिल जाते रजकण,
मेरे मलीन जीवन से तब
धोने तुम देते नहीं चरण;

तो क्यों इस मृण्मय भाजनमें
भर-भर देते फिर अमृत-धार?
तुम सिखा रहे हो बार-बार
मैं इस मिट्टी से करूँ प्यार।

दोगे क्या अमरण, क्षण दो क्षण?
ज्योतिर्मय! अपनी ज्योतिकिरण,
ले रहा अमृत के घूँट सभी
मेरी छाया में छिपा मरण!

पी रहा तुम्हारा रस बरबस
तुम देख रहे फिर भी उदार!
तुम सिखा रहे हो बार-बार
मैं इस मिट्टी से करूँ प्यार।

२५

तुमने मुझको अमर बनाया।

मेरे इन मृत्तिका-कणों पर
तुमने अपना अमृत चढ़ाया।

रूप भरा मेरे नयनों में,
रस सरसाया इन वचनों में,

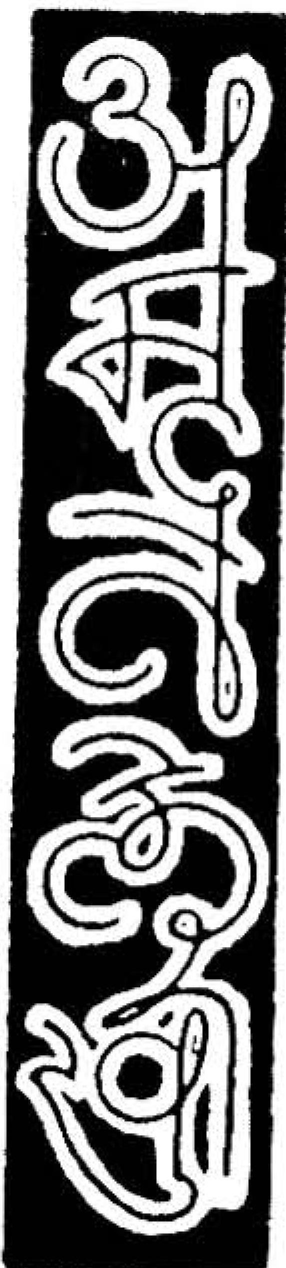
मेरी इन बन्धन-साँसों को
अपनी ममता से दुलराया!
तुमने मुझको अमर बनाया!

मुख पर मधु आभा बिखराई,
मन में प्रेम-सुधा निखराई,

तुमने अपना सरस परस दे
तन पर मन-वैभव बरसाया!
तुमने मुझको अमर बनाया।

व्यथा भरी तुमने प्राणों में,
कथा भरी तुमने गानों में,

रजकण का निर्माल्य बनाकर
तुमने निज नैवेद्य सजाया।
तुमने मुझको अमर बनाया।



२६

तुमने ये कैसे दान दिये ?

यह जो गीतों की वृहद् सभा
उसमें मैं गायक बन आया !
सुनता ही गीत रहा नव-नव
अपना कुछ गान न गा पाया !

स्वर एक दिया तुमने मुझको
गाने को अनगिन गान दिये !
तुमने ये कैसे दान दिये !

यह चित्राधार विराट् जहाँ
तूली है जीवन, रंग मरण ,
रेखायें सुख-दुख, मिलन-विरह ,
जय-हार और उत्थान-पतन !

दी लघु पुतली मुझको
निहारनेको पर चित्र महान दिये ।
तुमने ये कैसे दान दिये !

वह रहा गरल की सरिता में ,
लहराता दूर सुधा-सागर !
जबतक मैं जीवन में न बहूँ
पहुँचूँ कैसे सागर-तट पर ?

घट दिया क्षीण भंगुर भरने को
उसमें अमरण प्राण दिये !

तुमने ये कैसे दान दिये !

है सुधि ही केवल लक्ष्य अटल
है केवल पीड़ा ही सम्बल ,
सहचर है मेरी ही पग-ध्वनि ,
चलने की अवधि बने कुछ पल ,

पग दिये निबल, चलने को पथ
सूने दुर्गम अनजान दिये !

तुमने ये कैसे दान दिये !



२७

दान का प्रतिदान तुमको दे रहा हूँ !

फूँक से तुमने दिये हैं
वेणु के सब रन्ध्र ये भर,
मृदुलता उसको मिली
कोमल तुम्हारे ओठ छूकर,

मधुर ममता के परस से
घुल गयी उसमें मधुरिमा,
आज मुखरित हो उठी वह
अँगुलियों का स्पर्श पाकर !

स्वर मुझे तुमने दिया मैं
गान तुमको दे रहा हूँ,

दान का प्रतिदान तुमको दे रहा हूँ !

नयन-पट पर जो दिवस में
चित्र खिंच आते अमंगल,
डालता धो यामिनी में
भर पलक में स्वप्न का जल;

भाव है, फिर भावना भी,
किंतु एक अभाव तुम हो,
खोज में जिसकी निरन्तर
लीन है पुतली अचंचल;

मन मुझे तुमने दिया मैं
ध्यान तुमको दे रहा हूँ।

दान का प्रतिदान तुमको दे रहा हूँ !

मृत्तिका के कुछ कणों में
लिया अमृत बाँध मैंने !
कलश के कुछ बिंदुओं में
सिंधु पाया साध मैंने !

अमृतबिंदु रहे कहाँ अब ?
श्वास-सौरभ बस गया है,
पुतलियों में है चुराया
मधुर रूप अगाध मैंने !

कण मुझे तुमने दिया
मैं प्राण तुमको दे रहा हूँ !

दान का प्रतिदान तुमको दे रहा हूँ !



२८

दे दिया मानस मुझे तुमने
अमिट पर प्यास भी दी !

पुतलियों को दे दिये
तुमने अमित रंगीन सपने,
कर सके पर सच नहीं
तन और मन सुधि-चित्र अपने !

वेदना की चुभन में ही
यह अनन्त मिठास भी दी !
दे दिया मानस मुझे तुमने
अमिट पर प्यास भी दी !

इस लपट में यदि गला लूँ
मैं कलुषमय स्वर्ण तन का
आभरण तो क्या बना लोगे
न कुन्दन-रूप मन का ?

प्रलय-आँधी के हृदय में
सदय मलय बतास भी दी !
दे दिया मानस मुझे तुमने
अमिट पर प्यास भी दी ।

दे दिया दुर्गम विषम पथ
लक्ष्य जिसके तुम निकट ही !
बन गये बाधा नदी की
धार को ये युगल तट ही !

मुक्त सीमा-हीन को यह
बन्धनों-सी साँस भी दी !
दे दिया मानस मुझे तुमने
अमिट पर प्यास भी दी !

२६

देवता हो या पुजारी ?

मृत्तिका के दीप में यह
तूल मैंने ही धरा था,
हृदय से रस-रस निखरकर
स्नेह उसमें आ भरा था।

लौ लगा उसमें अचानक
आरती तुमने सँवारी।

देवता हो या पुजारी ?

प्राण में भर-भर चढ़ाया
था तुम्हें जो प्रेम संचित,
कर दिया तुमने वही
मुझको नयन से अब समर्पित;

प्रार्थनाएँ आज मेरी
बन गयीं वरदान सारी!

देवता हो या पुजारी ?

आज पूजागीत बन
लौटे मुझीको गान मेरे,
हो उठे दूने तुम्हें पा
ये समर्पित प्राण मेरे!

माँगने तुमसे अड़ा था
बन गये पर तुम भिखारी!

देवता हो या पुजारी?



३०

पहचान सकूँ क्या सुख को ?
चखने दो तुम जब दुख को !

मेरे मुख पर जो तुमने
चितवन की छाया डाली,
उससे जीवन-मरु में भी
लहलहा उठी हरियाली।

ये शोक अशोक किये हैं
सम्मुख कर दिया विमुख को !

यह डाल प्रलय-अवगुण्ठन
तुमने निज रूप छिपाया,
नव-नव प्राणों में तुमको
मैंने जीवन में पाया,

उन अपरिचितों में भी तो
झलकाते तुम निज मुख को !
पहचान सकूँ क्या सुख को ?
चखने दो तुम जब दुख को।

३१

पूछ रहे हो देव कि मुझको अपने मंदिर में रहने दो।

क्षण-क्षण बना तुम्हारा वंदन,
कण-कण बना आज नव-नंदन
वंदनीय अभिनंदनीय है,
आज तुम्हें पा प्राण अकिंचन!

भार चरणपूजा का मुझको यह मृदु मंजु मधुर वहने दो।

तुम मेरे अंतर के वासी,
रहने दो यों चिरविश्वासी;
बनें मृत्तिका के कण काशी
हों ये दशों इंद्रियाँ दासी;

इस नश्वर मृण्मय काया को क्षणिक अमृत-वैभव सहने दो।

रहो यहाँ तुम प्रतिमा बनकर
अगणित शीश झुकें चरणों पर;
पाप शाप तापित काया को
मिले सत्य-शिव-सुंदर का वर।

निज गौरव के लिए पुजारी अपना मुझे सतत कहने दो।



३२

प्रणय में मेरे प्रलय का प्यार भी है !

इन्द्रधनुषी रंग-मिलन के
तूलिका-सा चिरविरह ले,
आँकता हूँ चित्र में अपने
सुखद सपने सुनहले ;

क्षार करने को उन्हें पर
हाथ में अंगार भी हैं !

प्रणय में मेरे प्रलय का प्यार भी है !

ओंठ जो मुरली सुनाते,
अँगुलियाँ वीणा बजातीं,
वे रणस्थल में गरजते
ये समरभूषण सजातीं,

रक्त में मेरे सतत शत
सागरों का ज्वार भी है !

प्रणय में मेरे प्रलय का प्यार भी है !

बाँध लेंगे क्या मुझे
पल भर महल ये रत्न-विजड़ित !
मोह लेंगे कुञ्ज-उपवन
ये मदिर संगीत गुंजित ?

आज नन्दन-सा मुझे जब
वरद कारागार भी है !

प्रणय में मेरे प्रलय का प्यार भी है !

आज तन का कर रहा हूँ
मैं रुचिर श्रृंगार नव-नव,
किन्तु बलि-पंथी बनूँगा
कल उठे जयघोष, जनरव,

जन-जनार्दन के चरण में
शीश यह उपहार भी है !

प्रणय में मेरे प्रलय का प्यार भी है ।

३३

प्राण क्या था !

लय कहाँ हूँ राग भूला
है न स्वर में भी मधुरिमा,
किंतु फिर भी गा रहा हूँ
मिल रही है मान-महिमा !

गा सकूँ आगे बता दो
तुम कि पिछला गान क्या था ?

क्या न क्या था ?

मोह है इस सघन वन में
सूझता पग को नहीं पथ,
कण्टकों में है विंधी
है पङ्क से यह देह लथपथ !

चल सकूँ आगे बता दो
तुम कि पिछला यान क्या था ?

क्या न क्या था ?

नयन में छवि, स्वर श्रवण में
भर रहे मेरे निरन्तर,
आज तन-मन-प्राण मेरे
दब रहे वरदान पाकर,

ले सकूँ आगे बता दो—
तुम कि पिछला दान क्या था ?

क्या न, क्या था ?

दे रहे जो पेय भर-भर
पी रहा मैं पुलक-विह्वल ,
क्या पिलाते हो सुधा या
वारुणी अथवा हलाहल ?

पी सकूँ आगे बता दो
तुम कि पिछला पान क्या था ?

क्या न, क्या था ?

छू लिया तुमने मुझे क्यों
कर दिया मुझको अनश्वर ?
पार कर इतने प्रलय भी
जो न मैं पाया अभी मर ;

जा सकूँ आगे बता दो
तुम कि पिछला यान क्या था ?

क्या न, क्या था ?



३४

प्रेम, तेरी आग में यह
वासना का धूम्र क्यों है ?

काष्ठ जो समिधा बना है
अश्रु से तो है न गीला
या कि तेरे स्नेह की,
धारा कहीं है पंकशीला ?

पंथ तो इतना सरल है
बीच में यह घूम क्यों है ?
प्रेम, तेरी आग में यह
वासना का धूम क्यों है ?

लौ दिये की बुझ चलेगी
जो अनन्त छिपाव होगा,
आग की लपटें बुझेंगी
जो दुरंत दबाव होगा ;

चाहता निर्धूम जलना
मृत्तिका को चूम क्यों है ?
प्रेम, तेरी आग में यह
वासना का धूम क्यों है !

जल सकी है ज्वाल कोई
प्राणवायु बिना कभी भी ?
मिट सकी है वस्तु कोई
पूर्ण आयु बिना कभी भी ?

आह का झोंका नहीं तो
रोक क्यों है झूम क्यों है ?
प्रेम, तेरी आग में यह
वासना का धूम क्यों है ?



३५

फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे।

फूल से उत्पन्न हूँ मैं
आग से है खेल मेरा,
जी रहा हूँ मैं गरल पी
है अमृत से मेल मेरा,
है मुझे तो एक सुख-दुख
मैं प्रलय की ओर उन्मुख
फिर कृपा का भार कोई
क्या सकेगा झेल मेरा!

स्पर्श हैं निर्माण मेरे ध्वंस किंतु प्रहार मेरे,
फूल मेरे हार हैं अंगार हैं शृंगार मेरे।

बिजलियाँ चिनगारियाँ हैं
प्राण के संघर्ष-पथ की,
गर्जना है बादलों का घोष
मेरे क्रान्ति-रथ की;
है अजर तन, है अमर मन
है चिरंतन और जीवन,
देखना है अन्त, देखी
रंगशाला सृष्टि-अथ की।

तोड़ अपने कण्ठ से नक्षत्र हैं मैंने बिखेरे,
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे।

बाँध लेंगी क्या मुझे ये
क्रोड़ बीच मृणाल-बाहें?
रोक लेंगी पुतलियों से
झाँकती क्या मूक चाहें?
है रहा ब्रह्माण्ड आँगन
क्या रुकेगा फिर यहाँ तन?
क्या गला लेंगी मुझे ये
मृत्तिका की क्षीण आहें?

सो सकेंगे क्या भला ये देह कारागार मेरे?
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं, शृंगार मेरे।

दे रहे मुझको विजय क्या
मैं विजय का तो प्रदाता,
चाहिए मुझको विभव क्या
मैं विभव का भी विधाता,
शूल जग के फूल मुझको
रत्न जग के धूल मुझको,
मृत्यु मेरी सहचरी है
जन्म से है नित्य नाता।

भाग्य-लेखक सृष्टि के तो हैं रहे उद्गार मेरे
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं, शृंगार मेरे!



३६

बाँधो मुझको मत बन्धन में।

हे प्रेम! न मुझको विसुध करो
अपने इस मादक चुम्बन में।

आलोक हृदय का दो न छिपा
ये उठा वासना के बादल,
खिलने दो मुक्त गगन में तुम
ज्योत्स्ना आत्मा की चिर उज्ज्वल!

मत इस असीम को रुद्ध करो
अपने इस लघु आलिंगन में।

बाँधो मुझको मत बन्धन में।

अपनी अधरों की तूली से
अनुराग न तुम अपना आँको,
मत मिलन-झरोखों से झुकझुक
रीझों के झोंकों में झाँको;

अविरल बहती रस-गंगा को
सर बन न सिमिटने दो मन में।

बाँधो मुझको मत बंधन में।

३७

मेरे इस प्याले में कोई विष अविरल भरता जाता है।

पर, अधर तुम्हारा उसको छू छू
अमृत करता जाता है !

मेरी यह वेणु रन्ध्रवाली,
तुमने जो स्वरमय कर डाली;

पल-प्रतिपल उसके रन्ध्रों से
मधुगीत बिखरता जाता है !

दी तुमने लौ जो प्राण लगा,
यह बुझा-बुझा-सा दीप जगा;

इसके उजियाले में तन का प्रिय रूप निखरता जाता है।

भूलीभूली-सी थी तूली
तुमने अपनी छवि से छू ली,

अब वरुनी से इस पुतली पर नव चित्र उतरता आता है।

सुधि का मोहन उपवन फूला,
खिंच आता बरबस पथ भूला;

सुरभित श्वासों से प्राणों का
प्रिय पंथ सँवरता जाता है।



३८

मैं उड़ता-उड़ता आया हूँ।

शतदल की इन पंखड़ियों ने
फेंका था सौरभ का धागा,
सोता था जो अभाव मन में
वह विकल कामना बन जागा!

क्रीड़ा की कितनी उत्कण्ठा
अपने पंखों पर लाया हूँ!

मैं उड़ताउड़ता आया हूँ।

मधु प्यास इन्द्रधनुषी रँग में
रँगती है मेरे जीवन को,
कर रही तृप्ति की मादकता
लवलीन विसुधि में तन-मन को;

मैं अमृतदूत था, पर, अब तो
नश्वर चित्रों की छाया हूँ।

मैं उड़ता-उड़ता आया हूँ।

जब प्रलय-प्रभात हटा देगा
आ सृष्टि-निशा का अवगुण्ठन ,
किरणों की अपनी अँगुली से
खोलोगे तुम मेरे बंधन ;

मैं इसी अनश्वर आशा में ,
बाँधे यह अपनी काया हूँ !

मैं उड़ता-उड़ता आया हूँ !



३६

मैं किसी की मधु-सुरभि में
लुब्ध उसको खोजता हूँ!

मैं अकथ आनन्द पाकर
भी न जाने क्यों विकल हूँ!
फूल हूँ मैं वह कि निज फल
देखने में ही विफल हूँ।

गीत से जो दूर छूटी
गूँजती वह तान हूँ मैं,
लक्ष्य निज लय का बना जो
वह विमोहक गान हूँ मैं!

साँस का बन्दी बना हूँ,
साँस-साँस टटोलता हूँ!
मैं किसी की मधु सुरभि में
लुब्ध उसको खोजता हूँ!

ले अमर पाथेय आया हूँ
मरण के इस नगर में,
पी सुधा का घूँट लहराता
हलाहल की लहर में!

एक वीणा ले चला था
आज वह चाहे विशृंखल,

किन्तु, उससे छिड़ रहा
फिर भी अमर संगीत अविरल !

कौन है वादक न कुछ भी
पा सका उसका पता हूँ !
मैं किसी की मधु सुरभि में
लुब्ध उसको खोजता हूँ !

सुन रहे हैं प्राण मेरे
कौन युग-युग से कहानी,
पर, कहानी उस कहानी-
कार की मैंने न जानी ;

पूर्ण हो पायी न जो
अविराम युग-युग के कथन में,
मैं उसे सुनता रहा हूँ
स्वप्न-निद्रा-जागरण में,

एक क्षण से दूसरा क्षण
यों निरन्तर जोड़ता हूँ।
मैं किसी की मधु-सुरभि में
लुब्ध उसको खोजता हूँ।

४०

मैं क्या अपने को जान सकूँ!

सुख दुख की धूप छाँह वाली
चादर तुमने मुझ पर डाली,
जिससे मैं अपनी आँखों को
अपनी ही छवि दिखला न सकूँ!
मैं क्या अपने को जान सकूँ!

क्यों उठा रहे इन तारों में
स्वर तीव्र, मृदुल झंकारों में?
जिससे मैं अपने प्राणों से
निज गान चिरन्तन गा न सकूँ!
मैं क्या अपने को जान सकूँ!

तुमने क्यों ये बंधन डाले?
शूलोंवाले, फूलोंवाले,
जिनसे रुककर, जिनमें रमकर
मैं अपने पथ पर जा न सकूँ!
मैं क्या अपने को जान सकूँ!

४१

मैं क्यों गरल पिया करता हूँ ?

स्वप्न-जागरण में पी-पीकर
पात्र मनोरम अगणित कर से ,
एकबार भी लगा सका हूँ
मैं न तुम्हारा पेय अधर से ;

एक अमृत की आशा में मैं कड़वे घूँट लिया करता हूँ ?

मैं क्यों गरल पिया करता हूँ ?

कुछ अनमोल भरा है तुमने
मेरे इस मिट्टी के घट में ,
मैं अनजान लगा हूँ फिर भी
निशिदिन स्वर्ण-कलश की रट में ;

मैं प्यासा रह-रह अहरह यह सबको दान दिया करता हूँ ।

मैं क्यों गरल पिया करता हूँ ?

जग के धूलभरे हाथों में
अमृत बन गया आज हलाहल ,
पी लूँगा मैं वही तुम्हीं से
आज मिलन का है पल मंगल ;

एक बार पी मर जाने को मैं सौ बार जिया करता हूँ ?

मैं क्यों गरल पिया करता हूँ ?



४२

मैं तुम्हें देखूँ कि मैं—देखूँ तुम्हारी विश्व-प्रतिमा ?

मुख तुम्हारा देखकर तो
मैं दुखी कब रह सकूँगा ?
मिलन में डूबा हुआ
दुख की कथा क्या कह सकूँगा ?

एक सुधि ही तो तुम्हारी
बन रही है भार मुझको,
साथ का सुख क्या तुम्हारा
मैं वियोगी सह सकूँगा ?

भर सकूँगा क्या नयन में मैं तुम्हारी रूप-गरिमा ?
मैं तुम्हें देखूँ कि मैं—देखूँ तुम्हारी विश्व-प्रतिमा ?

विष यहाँ हैं तो सुधा भी
शूल हैं तो फूल भी हैं,
हार है तो जीत भी है
पुण्य है तो भूल भी है।

तम यहाँ आलोक भी तो,
हर्ष है तो शोक भी तो,
धूल है तो रत्न भी हैं
बाढ़ है तो कूल भी हैं।

प्रिय तुम्हारे पास तो—, केवल मिलेगी मान-महिमा !
मैं तुम्हें देखूँ कि मैं—देखूँ तुम्हारी विश्वप्रतिमा ?

४३

मैं पन्थी एक अगम पथ का !

किन सघन बनों में भूल-भटक झाड़ों से रुकरुक और अटक ;
मैं आज इधर हूँ आ निकला चलना है पर जाने कबतक ?

जल पर तिर, पंखों पर उड़ मैं आरोही हुआ कभी रथ का।
मैं पन्थी एक अगम पथ का।

अनगिन उन्नत गिरि-शिखर चढ़ा, आतुर हो उनसे उतर, बढ़ा ;
ढाया अपना ही स्वर्ण-महल अपना ही कारागार गढ़ा।

पथ-इति का क्या अनुमान भला ? जब ज्ञान नहीं उसके अथ का।
मैं पंथी एक अगम पथ का !

बीते कितने ही दुर्भर दिन काटीं लंबी रातें गिन-गिन ,
पर कुटिल काल के हाथों ये पाये न कभी सुख-सपने छिन ;

फूलों को देख थकान मिटी, काँटों पर चल यदि हार थका
मैं पंथी एक अगम पथ का।

पथ पर यों तो इतने सहचर पर तुम उन सबमें अजर-अमर !
है साथ तुम्हारे चलना भी एकांत ठहरने से सुखकर !

पथ तो सुखमय पर कैसा है ? वह लक्ष्य कि जिसको पा न सका।
मैं पंथी एक अगम पथ का।



४४

मैं यहाँ सौ वार आया !

एक पल भर भी पलक में
पर, तुम्हें मैं भर न पाया !

क्यों मुझे भरमा रहे तुम इन मुखों पर छाप दे-दे ?
क्यों मुझे भटका रहे तुम धड़कनों में चाप दे-दे ?

पथ कठिन, दुर्गम, विषमतम बन गये मुझको मनोरम,
क्यों थकान मिटा रहे—सुधि के करों से थाप दे-दे ?

डगमगाते दो पगों ने
अगम अग-जग में घुमाया,
मैं यहाँ सौ बार आया !

मैं पलक में स्वप्न आँजे पुतलियों में रूप रोके,
सुरभि में साँसें बसाये चाप सुन-सुन कान टोके;

गान में रसना रमाये रात तन-मन में समाये,
खो चुका कितने मिलन पथ-चिह्न की पहचान-धोके,

अब वहाँ चुपचाप छुप
मेरे भवन में ही बुलाया !
मैं यहाँ सौ बार आया।

४५

यदि पल भर मुझे निहार सको !

तो तुम अपने प्राणों की निधि
मेरे कण-कण पर वार सको।

रेखाएँ हों सब अजर-अमर,
सब रंग बनें सत-शिव-सुंदर;

अपनी सतरंगी तूली से
यदि मेरा चित्र उतार सको !

सब गान तुम्हारे गेय बनें,
ये प्राण तुम्हारे प्रेय बनें;

मेरी ममता में घोल-घोल
यदि अपने बोल निखार सको।

छू-छूकर जगत बने पावन,
बन जाये कारा भी नन्दन;

मेरी कविता की धारा में
यदि अपने चरण पखार सको !

यदि पल भर मुझे निहार सको !



४६

यह शरीर बार-बार
मानता सदैव हार।
किन्तु, प्राण रुक सका न
बँध सका न दुर्निवार!

नेत्र ने त्रिरंग तूलि
से लिखे मलीन लेख,
चित्र-पटल से न किन्तु
मिट सकी अलोक रेख,

मुग्ध मैं रहूँ सदैव
स्वप्न में उसे निहार।
यह शरीर बार-बार
मानता सदैव हार।

ले सँदेश श्वात-दूत
चल पड़ा सुदूर देश,
भूलता न लक्ष्य बसा
पन्थ-बीच उपनिवेश,

है तुम्हें समर्पणीय
अन्त जीवनोपहार।
यह शरीर बार-बार
मानता सदैव हार।

४७

यह साँसों का तार न टूटे!

सच की झलक मिले न भले ही सपनों का संसार न टूटे.

रसकण एक झरा झरना बन,
झरने ने पाया सरिता-तन,

बाढ़ बनी निगले न धरा को तट का कारागार न टूटे.
यह साँसों का तार न टूटे!

फूल खिलें बिखरें मुरझाकर,
गूँथे नये-नये ला-लाकर;

मरण-मालिनी गूँथ रही जो यह सुमनों का हार न टूटे!
यह साँसों का तार न टूटे!

मिलन, विरह, फिर, विरह मिलन बन,
करे प्राणप्रिय का मनरञ्जन,

जन्म-मरण की लुका-छिपी का यह मोहन-व्यापार न टूटे!
यह साँसों का तार न टूटे!

रीते कलश रन्ध्र से झर-झर
तुम उनमें नव-रस दो भर-भर;

अर्घ्य देवता के चरणों में यह जीवन की धार न टूटे!
यह साँसों का तार न टूटे।



४८

ये खेल किये सब क्या न तुम्हीं ने ?

तुम आँखों से ओझल बन-बन
डालो ये चित्रित अवगुण्ठन ;
पर छिप न सकोगे तुम पल भर
पलकों से मेरे मनभावन !

निज रूप दिखाकर मनरंजन घोला पुतली में ध्यान तुम्हीं ने !
ये खेल किये सब क्या न तुम्हीं ने ?

यह वंशीस्वर, वीणा-वादन
यह किंकिणि-रव, नूपुर रुनझुन ,
सूने-सूने से सब लगते ,
होते हैं विकल श्रवण सुन-सुन !

वह तान खोजते वे क्षण-क्षण जिससे मोहे थे कान तुम्हीं ने !
ये खेल किये सब क्या न तुम्हीं ने ?

युग-युग तक देकर मधु चितवन ,
दर्शन, संभाषण, परिरंभण ;
भर दिये मिलन की मधु-सुधि से
तुमने ये विषम विरह के क्षण !

निष्काम बने थे जो कर दूर सकाम किये ये प्राण तुम्हीं ने !
ये खेल किये सब क्या न तुम्हीं ने !

४६

विरह का वरदान मत दो मिलन का अभिशाप ही दो !

रूप जब शत-शत झलकते
पुतलियों के स्वप्न-पट पर,
वासना की साधना से
मन न बच पाता निमिष भर,

ध्यान का यह पुण्य मत दो, दर्शनों का पाप ही दो !
विरह का वरदान मत दो मिलन का अभिशाप ही दो !

आज अपनी बीन मैं
किसके प्रखर स्वर से मिलाऊँ ?
बाँसुरी के रन्ध्र को मैं
कौन मधुमय विष पिलाऊँ ?

सृष्टि का यह गीत मत दो, प्रलय का आलाप ही दो !
विरह का वरदान मत दो मिलन का अभिशाप ही दो !

मुक्ति यह शत बन्धनों से
भी प्रखरतर शूल जिसको,
धूलमय होकर बना...
निर्माल्य बिखरा फूल किसको ?

मुक्ति का आनंद मत दो, बन्धनों का ताप ही दो।
विरह का वरदान मत दो मिलन का अभिशाप ही दो !



५०

सृष्टि यह प्रलय-निमंत्रण बनी।

पुतलियों में सञ्चित हो रहीं
अहर्निशि जो छवियाँ अपवित्र,
कर रहीं धूमिल, मलिन, विरूप
तुम्हारे ये मनभावन चित्र;

आज मुझको विषबुझा कराल
बाण मेरी ही चितवन बनी!

लिया है मैंने चारों ओर
अहम् का जो झीना पट तान,
देखने देता पल भर नहीं
तुम्हारे अनगिन चित्र-विधान।

कामना मेरे मन की आज
तुम्हारा चिर अवगुण्ठन बनी!

दे दिया नश्वर चित्राधार
चित्र पर अक्षर आभावान्,
भला कब तक यों रोके रहूँ
मृत्तिका की प्रतिमा में प्राण?

बन गयी काया कारागार
साँस यह मुझको बन्धन बनी!

५१

हो इन प्राणों के प्रेय तुम्हीं !

मेरा यह तन, मेरा यह मन ,
हो प्राण, किसी को भी अर्पण ,
हो किसी प्रेम की प्रतिमा की
पूजा में अर्पित यह जीवन ;
मैं गीत किसी के भी गाऊँ हो उन गानों के गेय तुम्हीं !

सुध-बुध में मैं न तुम्हें भूलूँ ,
विस्मृति में भी सुध में झूलूँ ;
मीठे सपनों के आँगन में
तुमको अपने तन से छू लूँ ;
मैं ध्यान कहीं का भी लाऊँ हो उन ध्यानों के ध्येय तुम्हीं !

तुमको लख कुछ न मिले दर्शन ;
तुमको पा लघु त्रिभुवन का धन ;
परिचित हो बस तुमसे क्षण भर
अमृत का स्रोत बने जीवन ;
उपमेयों के उपमान तुम्हीं हो सब ज्ञानों के ज्ञेय तुम्हीं !

वर-सा जिसके चिंतन का सुख
अभिशापकहाँ बिछुड़नका दुख ?
तुम जन्म-जन्म के चिर सहचर
मुखहो फिर सम्मुख याकि विमुख ?
तुम प्रेय, गेय, तुम ध्येय, ज्ञेय हो चिर-जीवन के श्रेय तुम्हीं ।



५२

स्नेह का वरदान दो, मैं दीप युग से जल रहा हूँ!

कुछ गिने रसबिन्दु पाकर मृत्तिका अपनी लिये हूँ,
क्षीण-सी लघु वर्तिका में लौ लगाये ही जिये हूँ,

तिमिर पी पीकर निशा का,
पथ प्रकाशित कर दिशा का,

हार को अपनी विजय कर, शाप को निज वर किये हूँ,
दे विभा सब आज बुझने बार-बार मचल रहा हूँ।

स्नेह का वरदान दो, मैं दीप युग से जल रहा हूँ!

प्रिय, तुम्हारे प्राण से ही मिलन का सन्देश पाये,
आ रहा हूँ मैं विरह में क्षीण तन से डगमगाये,

विषम बाधामय अगम मग,
अवधि है बीती, थके पग,

दूर हैं फैले युगल भुज, दृग तुम्हारे मुस्कराये,
प्यार का पाथेय दो मैं पथिक युग से चल रहा हूँ।

स्नेह का वरदान दो, मैं दीप युग से चल रहा हूँ!

प्रकाशक
अवध-पब्लिशिंग-हाउस
लखनऊ

मूल्य २)

मुद्रक
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स
लाटूश रोड, लखनऊ